P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-X*June-2015

आज़ादी के बाद का भारतीय मुसलमान और हिंदी उपन्यास

मोहम्मद अरशद ख़ान
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
गांधी फ़ैज़–ए–आम कॉलेज,
शाहजहाँपुर

सारांश

आज़ादी के बाद भारतीय समाज में बहुत परिवर्तन हुए हैं। यदि एक ओर उसने विकास की ओर क़दम बढ़ाए हैं तो दूसरी ओर जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा, क्षेत्र आदि की दरारें भी गहराई हैं। अल्पसंख्यक समाज, विशेषकर मुस्लिम समाज विशिष्ट समस्याओं से दो–चार हुआ है। कछ ऐतिहासिक–सामाजिक दुर्घटनाओं की छायाओं से ग्रस्त, कंधों पर पापबोध लिए वह नज़रें झुकाकर जीने को अभिशप्त है। आज़ादी के छः दशक बीत जाने के बाद भी उसके अंदर न तो आत्मविश्वास पैदा हो पाया है, न ही वह बहुसंख्यक समाज का विश्वास जीत सका है। उसे बार–बार अपनी देशभक्ति का प्रमाण उपस्थित करना पड़ता है। वह डरा–सहमा और आशंकित है, इसलिए जल्दी उत्तेजित हो जाता है। रूढ़ियों को गले लगाए, अशिक्षा और ग़रीबी के दलदल में आकंठ धँसा वह बजबजाती नालियों, सड़ते घूरों और जर्जर घरों में बंद अपने मुहल्लों से बाहर निकलने में डरता है। राजनीतिक पार्टियों के लिए वह मतदाता से ज़्यादा हैसियत नहीं रखता। सांप्रदायिक दंगों ने जहाँ एक ओर उसे असुरक्षा बोध से ग्रसित किया है, वहीं दूसरी ओर प्रशासन की उपेक्षा और पक्षपात ने उसके मन में पराएपन का भाव भी किया है। उसका विश्वास टूटा है। उस पर पाकिस्तान का समर्थक, राजद्रोही के आरोप लगाने बहुत आसान हैं, पर उसके जटिल मनोविज्ञान को समझने की कोशिश नहीं हुई हैं। निरंतर असहिष्णु होते जा रहे समाज ने इस समस्या को ओर उलझाया और गंभीर बनाया है। आज़ादी के बाद लिखे गए उपन्यासों में मुस्लिम समाज की इन्हीं समस्याओं और उसके मनोविज्ञान को समझने की सार्थक कोशिशें हुई हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में इस समस्या को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : उपन्यास, हिंदी उपन्यास, विभाजन, स्वतंत्रयोत्तर साहित्य, मुस्लिम समाज, असुरक्षा बोध, विश्वसनीयता का संकट, साम्प्रदायिकता।

प्रस्तावना

आज़ादी के छः दशक बीत जाने के बाद भी मुस्लिम समाज की स्थिति बहुत बेहतर नहीं कही जा सकती। प्रगति के मामले में वह दलित वर्ग से भी पीछे है जबकि आबादी के मामले में उसकी व्यापक हिस्सेदारी है। समाज के आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में उसका प्रतिनिधित्व निराशाजनक है। अधिकांश आबादी निम्न स्तर का जीवन जी रही है। शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में पिछड़ेपन के कारण मुस्लिम समाज मुख्यधारा से कट गया है। ''अपने बंद मुहल्लों में अरब देशों के पैसों के बावजूद वह जाहिल है, ग़रीब है, अपनी गलियों से बाहर निकलने से डरता है।''[1] अपने बद्ध समाज में वह चारों ओर से कट गया है। मुस्लिमों के एक वर्ग ने उन्नति भी की है, मगर उनका प्रतिशत बहुत कम है। उसे संपूर्ण मुस्लिम समाज का प्रतिनिधि भी नहीं माना जा सकता।

वास्तव में ''विभाजन के बाद भारत का मुसलमान एक दीन–हीन प्राणी है। उस पर इतिहास की गहरी छायाएँ और वर्तमान के कुरूप दबाव हैं। उसकी सामाजिक स्थिति दयनीय है, राज्य सत्ता का कोई संरक्षण नहीं है और ऐसे लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जिन्हें भारत में मुसलमानों का रह जाना अतार्किक लगता है।''[2]

आजादी के बाद लिखे गए मुस्लिम जीवन पर आधारित उपन्यासों में इन स्थितियों का अत्यंत सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण मिलता है। विभाजन के पश्चात भारतीय मुसलमानों में उपजी असुरक्षा भावना एवं उनके मनोविज्ञान को चित्रित करने में य उपन्यास पूर्ण समर्थ रहे हैं।

भारत का मुसलमान पाकिस्तान क्यों नहीं गया? आख़िर पाकिस्तान उसी के लिए तो बनाया गया था। उसकी आज़ादी, ख़ुशहाली और तरक़्क़ी के लिए 'ग़रीब बिरादराने इस्लाम की इज़्ज़त की ख़ातिर तो क़ायदे आज़म

पाकिस्तान बनाए की फिकिर में थे।'[3] और फिर यह भय भी तो था कि 'हम ऐस मुल्क में रहते हैं जिसमें हमारी हैसियत दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। एक बार अंग्रेज़ों का साया हटा तो ये हिंदू हमें खा जाएँगे। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानों को एक ऐसी जगह की ज़रूरत है, जहाँ वह इज़्ज़त से जी सकें।'[4] वह मुल्क 'नया सही पर अपना तो होइए। जहाँ रोज़–रोज़ ओकी खुद्दारी को कोई ललकारिए तो नाहीं। कोई ओके गरिबान पर हाथ डाले की जुर्रत तो न करिहे।'[5]

इस भय और प्रलोभन के बावजूद मुसलमानों का एक बड़ा वर्ग पाकिस्तान नहीं गया, इसलिए कि 'हिंदुस्तान उसका घर था और घर नफ़रत और मोहब्बत दोनों से ऊँचा होता है।'[6]

'ओस की बूँद' के वज़ीर हसन मुस्लिम लीग के भरपूर समर्थन और पाकिस्तान के प्रति तमाम शुभकामनाओं के बावजूद पाकिस्तान नहीं जाते, सिर्फ इसलिए कि भारत उनका घर था और वे अपना घर छोड़कर नहीं जा सकते थे–न नफ़रत के नाम पर, न भय के नाम पर और न ही मज़हब के नाम पर। पाकिस्तान जाने के प्र"न पर वह अपने बेटे से कहते हैं–''मैं पैगंबर नहीं हूँ जो हिजरत को फलसफ़ा बना लूँ। मैं एक गुनहगार आदमी हूँ और इसी सरज़मीन पर मरना चाहता हूँ, जिस पर मैंने गुनाह किए हैं।''[7]

'सूखा बरगद' के अब्दुल वहोद भी हिंदुस्तान छोड़कर नहीं जाते। वह कहते हैं–''मैं किसी मजबूरी में यहाँ नहीं रुका। चाहता तो खुला रास्ता था पाकिस्तान जाने का....लेकिन मैं वहाँ अजनबियों के बीच क्यों जाता? और जाकर क्या करता?''[8]

'छाको की वापसी' में हबीब भाई और छोटे अब्बा की तमाम का"ा"ों के बावजूद अम्मा ढाका (पूर्वी पाकिस्तान) नहीं जातीं। कहती हैं–''ना बाबू, हम तो न जा सके हैं कहीं इस घर को छोड़कर''[9]

'आधा गाँव' के फुन्नन मियाँ जैसे लोग, जो सारी सोच–समझ और सारी समस्याओं का हल लाठी के बल में निहित मानते हैं, वे भी पाकिस्तान इसलिए नहीं जाते कि ''बाप–दादा हियाँ रहे, चौक इमामबाड़ा हियाँ है, इज्जत आबरू हियाँ है। गंगौली से हमें मतलब न हुइहै तो का रकियन का हुइहै।''[10]

'ज़िंदा मुहावरे' का इमाम भी छोटे भाई निज़ाम के हिंदुस्तान छोड़कर जाने पर यही सवाल करता है–''बँटवारा मुल्क का हुआ है हमारे गाँव का तो नहीं? हमारा पु"तैनी घर, खेत, रि"तेदारी, बिरादरी सब कुछ यहीं है।''[11]

तमाम भय और प्रलोभनों के बावजूद भारत का आम मुसलमान पाकिस्तान नहीं गया क्योंकि वह अपना घर, अपनी ज़मीन और अपनी विरासत को छोड़कर अजनबियों के बीच जड़–हीन वृक्ष की भाँति नहीं जी सकता था। इस मिट्टी से न उसे भय जुदा कर सका, न नफ़रत। पर आज़ादी के बाद तेज़ी से परिवर्तित होती स्थितियों ने उसकी राष्ट्रभक्ति, वफ़ादारी और मिट्टी के प्रति उसके प्रेम का, लगाव को कटघरे में ला खड़ा कर दिया। अपने भावनात्मक लगाव और पूरी दे"ाभक्ति के बावजूद वह समाज के एक बड़े वर्ग का वि"वास नहीं हासिल कर पाया। बहुसंख्यकों को यही लगता है कि मुसलमान ''जहाँ भी हैं, बुरे हैं।''[12] ''यहाँ का मुसलमान होने या न होने के इम्तहान से गुज़र रहा है। शासन हो या बहुसंख्यक जनता, सब उसकी हस्ती मिटान पे दरपे हैं।''[13]

''सूखा बरगद' के अब्दुल वहीद हों या अली साहब राष्ट्र के प्रति अपनी सहानुभूति और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अपने सक्रिय सहयोग के बावजूद भारतीय न रहकर मुसलमान होकर रह गए हैं। वर्तमान समाज में जद्दोजहद करते करते और अपनी अस्मिता तला"ात हुए उन्हें जो निष्कर्ष प्राप्त होता है वह यही है कि ''मुसलमान होकर रह गए हैं।''[14]

'हमारा शहर उस बरस' के हनीफ़ के आगे धर्म कोई बाधा नहीं है। वह अपना विवाह हिंदू लड़की से करता है तो भी धर्म उसकी खु"ियों में आड़े नहीं आता। परंतु अपने निरपेक्ष चरित्र के बावजूद हनीफ़ यह सोचने को मजबूर हो जाता है कि ''मेरी मुसलमानियत मुझ पर लाद दी गई है।''[15]

'काला जल' का मोहसिन राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने और नायडू के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कभी गीता प्रवचन कराने, तो कभी ग्रामीणों की सभा बुलाने का काम करके जन–जागरण का प्रयास करता है। मगर इन सारी कोि"ा"ों का हासिल यह है कि आज़ादी के बाद उसे सुनने को मिलता है–''भेजो सालों को पाकिस्तान, बांधो सालों को जिन्ना साहब की दुम से।''[16]

'टोपी "ुक्ला' का इफ्फन क्लास में खड़ा होकर छात्रों को यह नहीं पढ़ा सकता कि ि"ावाजी और राणा प्रताप साझा संस्कृति के विकास में एंटी चरित्र की भूमिका निबाह रहे थे। अकबर आदि ने जो पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र की परंपरा क़ायम की थी उसके विकास में इनका हस्तक्षेप साझा संस्कृति की इस विरासत को तोड़कर साम्प्रदायिक राजनीति को बढ़ावा दे रहा था। यह कहने पर पाकिस्तान समर्थक और ग़द्दार कहे जाने के ख़तरे हैं।

हनीफ़ की भी यही समस्या है कि वह अध्यापक है और मुसलमान है और छात्रों के सामने बहुत–से सच नहीं कह सकता। सच कहने की कोि"ा"ा करेगा तो डिपार्टमेंट के बाहर उसके ख़िलाफ़ नोटिस चिपका दी जाएगी। अभिव्यक्ति का यह संकट और अवि"वास का यह रूप हनीफ़ और इफ्फन दोनों को सहना पड़ता है, जो उन्हें भीतर तक तोड़ देता है।

'ज़िंदा मुहावरे' में पाकिस्तान में बस गए निज़ाम अपने लड़के की शादी हिंदोस्तान की लड़की से करना चाहते हैं। सैफुल्लाह बेटी का हाथ माँगने पर निज़ाम से कहते हैं–''अपनी लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूँ? पहले के लगाए दाग़ धोते–धोते चालीस–पैंतालीस साल गुज़र गए हैं और अब फिर वही बात।''[17]

भारत–पाक युद्धों और पाकिस्तान–बांग्लादे"ा विभाजन ने इस अवि"वास को गहराने में और मदद की है। कुछ उपन्यासों में इन स्थितियों का भी अंकन मिलता है। 'सूखा बरगद' में सुहेल अपने मित्र विजय से इसी कारण दूरी महसूस करने लगता है। उसे लगता है कि

लोग, 'हमें कनखियों से देखते हैं और हमारे आते ही बात का टॉपिक बदल देते ह–जैसे कोई उनकी अपनी राज़ की बात हो और हमारे जान लेने से बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा। हम जासूस हैं न पाकिस्तान के।''[18]

वि"वासनीयता के संकट के साथ–साथ असुरक्षा बोध भी मुसलमान समुदाय के सामने ज्वलंत समस्या है और जाने–अनजाने कहीं न कहीं उसकी चेतना को प्रभावित और निर्धारित करता चलता है। वस्तुतः विभाजन के दौरान बहुत से मुसलमानों ने इसलिए भारत छोड़ दिया था कि उनके मन में एक तरह का असुरक्षा–बोध घर कर गया था, या उनके मन में एक मिथ्या असुरक्षा–बोध भर दिया गया था। उन्हें लगा था कि उनकी अस्मिता भारत में सुरक्षित नहीं रह पाएगी। उन दिनों 'तरह–तरह की बातें वातावरण में उछल रही थीं–देखना अब जो मुसलमान यहाँ रह जाएँगे उनकी क्या हालत होती है। सब हिंदू बना लिए जाएँगे। चोटी रखनी पड़ेगी। जो यह सब नहीं करेंगे, उन्हें चुन–चुनकर मार दिया जाएगा।''[19]

इसी मिथ्या असुरक्षा–बोध के चलते बहुत–से मुसलमानों ने हिंदुस्तान छोड़ दिया। इस घटना से भारत में रह गए मुसलमानों में भी आत्मवि"वास घटा। भेद–भाव की राजनीति ने बाक़ी क़सर पूरी कर दी और भारतीय मुसलमान को अलग–थलग खड़ा कर दिया। इस कारण वह आ"ांका और असुरक्षा से ग्रस्त हो उठा।

आज़ादी के बाद गंगौली के ज़मींदारों में पैठ रहे ख़ौफ़ और संत्रास को देखा जा सकता है–''जिस ताअल्लुक और बाहमी रिफ़ाक़त पर दोस्ती के मुआ"ारे की बुनियाद थी, वह तआल्लुक टूट रहा था, वह रिफ़ाक़त ख़त्म हो रही थी और एतमाद की जगह दिलों में ख़ौफ़ और गहरा शक परवरि"ा पा रहा था।''[20]

सांम्प्रदायिक दंगों ने मुसलमानों के मन में पल रहे असुरक्षा–भय को और गाढ़ा किया है। दंगों में प्र"ाासन और सत्ता पक्ष की भूमिका से वह असहाय और शंकित है। दिसंबर 1992 में बाबरी मस्जिद के कुछ उग्रवादो तत्वों द्वारा ध्वस्त कर दिए जाने के बाद यह संकट और गहराया है। 'दास्ताने लापता' में इसका वर्णन मिलता है–''दो लोग धक्का लगाएँ तो घर का दरवाज़ा मय दीवार के अंदर आन गिरे। वह अब्बा की छड़ियों के बारे में पूछ रहे हैं। कुछ तो हिफ़ाज़त का एहसास रहे।''[21]

ख़तर और असुरक्षा का यह भाव निम्न वर्ग के लिए और भयानक है। दंगों में सबसे ज़्यादा प्रभावित होने वाला वर्ग यही है। 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' में बनारस के दंगों और निम्न वर्ग पर उसके प्रभाव का अंकन किया गया है–''अब का होइए? मतीन अपने बेटे से पूछता है तो इकबाल चुप रहता है। वह कर ही क्या सकता है? न तो वह तलवार चला सकता है न किसी की आँख में मिर्चे की बुकनी झोंक सकता है।''[22]

अल्पसंख्यक वर्ग का यह असुरक्षा–बोध सिर्फ जीवन के संकट तक नहीं है उसने कई और तरह के संकट पैदा किए हैं। उसे सांस्कृतिक तौर पर काटने की को"ि"ा की जा रही है। 'आधा गाँव' में फुन्नन मियाँ का बेटा 'भारत छोड़ो' आंदोलन में कासिमाबाद थाने का घेराव करता है और शहीद होता है। पर जब कासिमाबाद में शहीदों की समाधि का उद्घाटन होता है तो उसमें उनके बेटे का कहीं नाम नहीं होता। ''ए साहब! हियाँ एक ठो हमरहू बेटा मारा गया रहा। अइसा जना रहा कि कोई आपको ओका नाम न बताइस? ओका नाम मुन्ताज रहा।''[23]

इसी असुरक्षा–बोध के चलते मुसलमान ज़्यादा आक्रामक हुआ है। 'हमारा शहर उस बरस' का एक पात्र कहता है–''दुनिया भर में दंगे इसी तरह शुरू होते हैं। अल्पसंख्यक असुरक्षा भाव से अपने में घुसे रहते हैं...त्रस्त होकर या लड़ाका होकर पत्थर उठा लेते हैं। पर असल शुरुआत यह नहीं होती। उनके भीतर अपमान का क्ले"ा, नज़र अंदाज़ किए जाने का गुस्सा''[24] इस रूप में फूटता है। हिंदू और मुसलमान दोनों की सांप्रदायिकता में अंतर यह है कि एक की सांप्रदायिकता इनसिक्योरिटी के डर से पैदा हुई है, जबकि दूसरे की ताक़त के अहंकार से। अतः दोनों के चिल्लाने में फर्क़ है।

हिंदी उपन्यासों में सर्वत्र भय और असुरक्षा का ही वातावरण नहीं मिलता, कहीं–कहीं आ"वस्त करने वाले चित्र भी मिलते हैं, जो एक उम्मीद बंधाते हैं कि अभी सब कुछ बिखरा नहीं है, बहुत कुछ बाक़ी है।

'ज़िंदा मुहावरे' का गोलू पढ़–लिखकर कलेक्टर हो जाता है। इमाम जो उसकी सफलता के प्रति शंकालु रहते हैं, यह देखकर प्रसन्न हो जाते हैं–''गोलू के कलेक्टर बनते ही शंकाएँ इमाम के दिल व दिमाग़ क दरवाज़े खोलकर जाने कहाँ भाग गई थीं। सब कुछ इतना हल्का और सहज महसूस हो रहा था, जैसे कभी कुछ टूटा–बिखरा ही न हो, बल्कि वही कसाव–जुड़ाव, जिसकी उसको बरसों से तला"ा थी। इतने दिनों बाद उसे वापस घेर बैठा था। वि"वास की ज़मीन नीचे थी और सुरक्षा का आसमान ऊपर था। उसके चारों ओर फैली कायनात भी हँस रही थी।''[25]

संदर्भ सूची

1. श्री, गीतांजलि, हमारा "ाहर उस बरस, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–58
2. राजकि"ाोर (सं0), भारतीय मुसलमान–मिथक और यथार्थ, वाणी प्रका"ान नई दिल्ली, भूमिका पृ0–8
3. रज़ा, राही मासूम, आधा गाँव, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–133
4. वही, पृ0–248
5. शर्मा, नासिरा, जिंदा मुहावरे, वाणी प्रका"ान नई दिल्ली, पृ0–11
6. रज़ा, राही मासूम, ओस की बूँद, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–20–21
7. वही, पृ0–19
8. एहते"ााम, मंजूर, सूखा बरगद, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–70
9. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, राधाकृष्ण प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–20
10. रज़ा, राही मासूम, आधा गाँव, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–45
11. शर्मा, नासिरा, जिंदा मुहावरे, वाणी प्रका"ान नई दिल्ली, पृ0–10
12. श्री, गीतांजलि, हमारा "ाहर उस बरस, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–184

13. एहते"ाम, मंजूर, सूखा बरगद, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–221
14. वही, पृ0–160
15. श्री, गीतांजलि, हमारा "हर उस बरस, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–233
16. शानी, काला जल, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–311
17. शर्मा, नासिरा, जिंदा मुहावरे, वाणी पका"ान नई दिल्ली, पृ0–123
18. एहते"ाम, मंजूर, सूखा बरगद, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–81
19. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, राधाकृष्ण प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–18
20. रज़ा, राही मासूम, आधा गाँव, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–233
21. एहते"ाम, मजूर, दास्ताने लापता, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–255
22. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, झीनी–झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–165
23. रज़ा, राही मासूम, आधा गाँव, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–295
24. श्री, गीतांजलि, हमारा "हर उस बरस, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, पृ0–109
25. शर्मा, नासिरा, जिंदा मुहावरे, वाणी प्रका"ान नई दिल्ली, पृ0–91